मध्यप्रदेश के तीज त्यौहारों के विविध रंग

- लेखक : विवेक रंजन श्रीवास्तव
- तारीख : June 08, 2026

मध्यप्रदेश की संस्कृति में लोक पर्वों का विशेष स्थान है। मालवा के गणगौर से लेकर बुन्देलखण्ड की कजरियों और जनजातीय अंचलों के भगोरिया तक, हर उत्सव में एक गहरा लोक दर्शन छिपा है। वर्तमान समय में आधुनिकता, शहरीकरण और तकनीकी विकास के प्रभाव ने इन पारम्परिक पर्वों के स्वरूप को काफी हद तक प्रभावित किया है। प्रस्तुत लेख में वरिष्ठ लेखक विवेक रंजन श्रीवास्तव ने इन तीज त्योहारों के लोक पक्ष, उनके दार्शनिक आधार और आधुनिक युग में उनके सामने खड़ी चुनौतियों का सूक्ष्म विश्लेषण किया है।

मध्यप्रदेश को भारतीय संस्कृति का लघु रूप कहा जाता है। यहाँ के पर्वों में लोक और शास्त्र का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। यहाँ लोक का अर्थ उस अविरल सांस्कृतिक धारा से है, जो सुसंस्कृत हो कर शास्त्र बन जाती है, और पुनः समाज में अपने विविध स्वरूपों में प्रगट होकर समाज को सिंचित करता है।

भारत में यही चक्र लोक से शास्त्र और शास्त्र से लोक में अविरल बहते आई है। यह धारा आज भी खेतों, खलिहानों और जनजातीय बस्तियों में ढोल की थाप पर थिरकती हुई अनुभव की जा सकती है, तो वहीं मंदिरों और यज्ञ वेदी में मंत्रों के साथ सुनाई देती है।

नर्मदा नदी के पावन तटों से लेकर विन्ध्य और सतपुड़ा की पहाड़ियों तक, यहाँ का जन-जीवन पूरी ऊर्जा के साथ स्पन्दित होता है। मालवा और निमाड़ अंचल में गणगौर प्रकृति और दाम्पत्य जीवन का एक पवित्र उत्सव माना जाता है। इसका आयोजन चैत्र मास की तृतीया को होता है।

होली के बाद आरम्भ होकर यह पर्व पूरे 16 दिनों तक उल्लास के साथ चलता है। इस पर्व के पीछे एक बहुत ही रोचक लोक कथा जनमानस में प्रचलित है। इसके अनुसार माता पार्वती अपने मायके आती हैं। वह वन में सखियों के साथ फूल चुनती हैं।

उनके अगाध प्रेम से प्रसन्न होकर भगवान शिव उन्हें वापस लेने आते हैं। इसी पवित्र मिलन को लोक में उत्सव का रूप दिया गया है। महिलाएँ और युवतियाँ पूरी श्रद्धा के साथ इस व्रत का पालन करती हैं। लोक गीतों में इस पर्व की आत्मा बसती है। महिलाएँ गाती हैं,

"रणुबाई रो सोनो रो सूरज ऊग्यो, ईसरजी रे आंगणे..."।

इसका अर्थ है कि ईसर जी के आँगन में रणुबाई का सोने जैसा सूरज उगा है, जो समृद्धि और सुख का प्रतीक है। सांस्कृतिक दृष्टि से इस पर्व में मिट्टी की सुन्दर मूर्तियाँ सजाई जाती हैं। बाड़ी यानी ज्वारे बोने की परम्परा है। यह परम्परा भूमि की उर्वरता और नए अंकुरण के प्रति गहरी कृतज्ञता को दर्शाती है।

गौरमाता और इसरदेव

बुन्देलखण्ड अंचल में कजरियां वीरता और सामाजिक सद्भाव का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पर्व है। इसका आयोजन श्रावण पूर्णिमा के अगले दिन किया जाता है। वर्षा ऋतु के इस समय में धरती हरियाली की चादर ओढ़ लेती है और किसानों के चेहरों पर नई आशा दिखाई देती है।

बुन्देलखण्ड में कजरियां का सीधा सम्बन्ध महोबा के वीर आल्हा और ऊदल के शौर्य से जोड़ा जाता है। इन वीरों ने अपनी बहन चन्द्रावली की रक्षा के लिए घोर युद्ध किया था। इसी ऐतिहासिक विजय और रक्षा के उल्लास में कजरियां मनाई जाती हैं। लोक गीतों में आज भी वह गौरवशाली इतिहास पूरी तरह जीवित है।

"महोबे की कजरियां जेठ सुदी नौमी की बोई..."

यह लोक गीत बुन्देलखण्ड के शौर्यपूर्ण इतिहास और कजरियों के रोपण की वीर कथा कहता है। पर्यावरण के प्रति भी यह पर्व हमें सचेत करता है। छोटी टोकनियों में पूरे यत्न के साथ गेहूँ बोया जाता है। कजलिया के दिन उन अंकुरित नन्हे पौधों को नदी या तालाब में धोकर विसर्जित किया जाता है।

यह पर्यावरण से जुड़ने के साथ साथ सद्भाव, भाईचारे और प्रेम का त्योहार है। लोग एक दूसरे को कजरियां भेंट करते हैं। युवा अपने बड़ों का आशीर्वाद लेते हैं और यह परम्परा सामाजिक समरसता का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है।

मध्यप्रदेश की जनजातीय संस्कृति में मड़ई और मेलों का सर्वोच्च स्थान है। ये केवल व्यापारिक केन्द्र नहीं हैं। ये धार्मिक श्रद्धा और आस्था के बहुत बड़े केन्द्र भी हैं। दीपावली के बाद मंडला के रामनगर में आयोजित होने वाला मेला बहुत ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। यहाँ बड़ादेव की पूजा पूरे विधि विधान से की जाती है।

मड़ई की स्थापना को आध्यात्मिक शक्ति का प्रतीक माना जाता है। अंगा देव को कंधों पर उठाकर सैला नृत्य करना इस पारम्परिक मेले का मुख्य आकर्षण होता है। इसी तरह होली से ठीक पहले मंडला के हिरदेनगर में एक विशाल पशु मेला लगता है।

भारत भर में कई स्थानों पर लगता है पशुमेला

यह मेला ग्रामीण अर्थव्यवस्था का सीधा प्रतिबिम्ब है। यहाँ बैल, गाय, घोड़े, खच्चर और हाथी जैसे कई जानवर दूर दूर से लाकर

बेचे और खरीदे जाते हैं। कृषि आधारित समाज में पशुधन के प्रति सम्मान प्रकट करने की यह परम्परा बहुत प्राचीन है।

छिंदवाड़ा जिले के पांढुर्ना में भाद्रपद कृष्ण पक्ष की अमावस्या के अगले दिन गोटमार का एक साहसिक मेला लगता है। जाम नदी के बीचों बीच एक झंडा गाड़ा जाता है। सावरगाँव और पांढुर्ना के लोग एक दूसरे पर पत्थर बरसाते हुए उस झंडे को छीनने का प्रयास करते हैं। यह परम्परा स्थानीय वीरता और ऐतिहासिक संघर्ष की याद दिलाती है।

गोटमार मेला - पत्थरबाजी की परंपरा

इसी प्रकार भील अंचल में होली से 7 दिन पूर्व भगोरिया हाट बाजार लगते हैं। ये बाजार जीवन की उन्मुक्तता और उल्लास के प्रतीक हैं। यहाँ गुलाल लगाकर प्रेम और सामाजिक सहमति की अभिव्यक्ति की जाती है। नई फसल आने की खुशी में ग्रामीण जन ढोल और मांदल की थाप पर लोक नृत्य करते हैं।

अविभाजित मध्यप्रदेश और वर्तमान छत्तीसगढ़ के बस्तर अंचल की घोटुल परम्परा विश्व की अनूठी सामाजिक संस्थाओं में से एक है। यह एक सामूहिक आवास होने के साथ साथ जनजातीय युवाओं के लिए संस्कार केन्द्र और कला केन्द्र भी है।

गोटुल- नारायणपुर (बस्तर)

यहाँ युवा पीढ़ी अपने लोक गीतों, नृत्यों और सामाजिक उत्तरदायित्वों को गहराई से सीखती है। घोटुल के भीतर ही आराध्य देव लिंगो पेन की पूजा की जाती है। आगामी त्योहारों की रूपरेखा यहीं मिल जुलकर तय होती है। यह व्यवस्था सामूहिक जीवन और अनुशासन का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है।

मध्यप्रदेश में जन्म से लेकर विवाह तक के संस्कार भी उत्सव का रूप ले लेते हैं। सन्तान के जन्म पर घर आँगन में सोहर गाए जाते हैं। काव्य उद्धरणों को जस का तस प्रस्तुत करते हुए इसका आनन्द लिया जा सकता है:

"जुग-जुग जियसु ललनवा, भवनवा के भाग जागल हो..."
या
"कौने बरन सुत जनमे, कौने बरन मुख जोत रे..."।

ये गीत नवजात शिशु के सुखद भविष्य की कामना करते हैं। विवाह संस्कार के समय गाए जाने वाले बन्ना बन्नी गीतों में हास्य और शृंगार का अनूठा मेल होता है।

"बन्ना के हाथन में सोहे रुमाल, बन्नी के हाथों में मेहँदी रची..."।

विवाह के अवसर पर गाए जाने वाले सिटौनी या गाली गीत सामाजिक सम्बन्धों की कठोर औपचारिकता को तोड़ते हैं। इनसे दोनों परिवारों के बीच हास परिहास के साथ एक नई आत्मीयता स्थापित होती है।आज की युवा पीढ़ी तकनीक और डिजिटल दुनिया में अधिक समय बिता रही है। इस कारण हमारे पारम्परिक लोक पर्वों पर गहरा संकट मंडरा रहा है।

उच्च शिक्षा और रोजगार के लिए गाँवों से शहरों की ओर हो रहा निरन्तर पलायन इन पर्वों का उल्लास कम कर रहा है। 16 दिनों तक चलने वाली गणगौर या 7 दिनों की कजरियां अब कई युवाओं को बोझिल अनुभव होती हैं। युवा वर्ग त्वरित और अल्पकालिक मनोरंजन की तलाश में रहता है।

शहरीकरण के कारण बहुमंजिला आवासीय संस्कृति और एकल परिवारों का चलन तेजी से बढ़ा है। इससे सामुदायिक उत्सवों की रौनक फीकी पड़ गई है। स्थानीय बोलियों के प्रति कुछ लोगों में प्रेम कम हुआ है। इस कारण लोक गीतों का मूल भाव युवा

पीढ़ी तक सही रूप में नहीं पहुँच पा रहा है।

लोक परम्पराओं को सुरक्षित रखने के लिए आज कई ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है। इनका दस्तावेजीकरण किया जाना चाहिए। शिक्षा प्रणाली में स्थानीय पर्वों और उनके महत्व को शामिल करना अनिवार्य है। सामुदायिक सहभागिता को बढ़ावा देकर हम लोक कलाओं को पुनर्जीवित कर सकते हैं।

मड़ई और मेलों को केवल बाजार न मानकर उन्हें हमारी सांस्कृतिक विरासत के रूप में प्रचारित करना होगा। मध्यप्रदेश के तीज त्योहार रामनगर की मड़ई से लेकर गोटमार के साहस तक और सोहर की मिठास से लेकर कजरियों के गौरव तक फैले हुए हैं।

ये सभी एक अखंड सांस्कृतिक सूत्र में बंधे हैं। शहरीकरण और बाजारीकरण के इस दौर में हमें लोक की मौलिकता और वर्तमान की आधुनिकता के बीच एक सन्तुलन बनाना होगा। यदि हम अपनी इन समृद्ध लोक मान्यताओं को संरक्षित करने में सफल रहे, तो हमारी आने वाली पीढ़ी निश्चित रूप से एक सुसंस्कृत और सुदृढ़ समाज के रूप में विकसित होगी।

- विवेक रंजन श्रीवास्तव